

(समयसार, १२६ कलश का भावार्थ) ज्ञान तो चेतनास्वरूप है.. अर्थात् यह आत्मा चेतनास्वरूप है, ऐसा। जाने-देखे, यह उसका स्वरूप है। और रागादिक.. शुभ-अशुभराग, वह पुद्गलविकार होने से जड़ हैं;.. यह (आत्मा) चैतन्यस्वरूप है तो वह (राग) जड़ है। दोनों आमने-सामने लिये। जानने-देखनेवाला इसका (आत्मा का) स्वरूप है। राग-द्वेष अर्थात् पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव, दोनों पुद्गलविकार होने से जड़ हैं;.. आहाहा!

किन्तु ऐसा भासित होता है कि मानों अज्ञान से ज्ञान भी रागादिरूप हो गया हो,.. अनादि अज्ञान के कारण चैतन्यस्वरूप, वह मानों रागरूप हो गया हो —ऐसा अज्ञानी को भासित होता है। राग से भिन्न है, वह भासित नहीं होता। आहाहा! रागादिरूप हो गया हो-ऐसा भासित होता है। अर्थात् ज्ञान और रागादिक दोनों एकरूप-जड़रूप-भासित होते हैं। आहा! राग जड़ है और यह जीव चैतन्यस्वरूप है। उसे दोनों जड़रूप भासित होते हैं। राग मैं हूँ (-ऐसा भासित होता है)। उसका अस्तित्व, जो चैतन्य सत्त्व है, उस सत्ता का सत्त्व खबर नहीं और यह राग हूँ - ऐसे अचेतन को-जड़ को अपना जानकर जड़रूप परिणमता है। आहाहा!

जब अन्तरंग में ज्ञान और रागादि का भेद करने का तीव्र अभ्यास.. जीव

करे। तीव्र दारुण आया था न? चैतन्य के स्वरूप को अन्तर में झुकाकार राग से भिन्न करके अन्दर चैतन्य का अभ्यास करे। आहाहा! नहीं तो चैतन्य को जाना नहीं, इसलिए उसके जानपने में कहीं अपनापना तो मानेगा न? चैतन्यपना जानने में नहीं आया, इसलिए दया, दान, रागादि भाव, वे मेरे हैं—ऐसे उन्हें अपना अस्तित्व मानता है। अपना अस्तित्व चैतन्य है, वह जाना नहीं, (इसलिए) कहीं अपनी अस्ति तो माननी पड़ेगी न! ये राग और द्वेष के परिणाम... आहाहा! उस अचेतन को आत्मारूप से मानता है।

भेदज्ञान करने से अन्तरंग में आत्मा और राग का भेद करने का तीव्र अभ्यास करने से। पढ़कर या ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। अन्दर भेद करने का तीव्र अभ्यास। ज्ञानस्वरूप और परसन्मुख जाती रागादि की दिशा, दोनों के लक्षण भिन्न जानकर, जो भेदज्ञान का तीव्र अभ्यास करे। आहाहा! भेदज्ञान प्रगट होता है.. भेद करने का तीव्र अभ्यास करने से भेदज्ञान.. आत्मा का ज्ञान भिन्न पड़ता है। आहाहा!

तब यह ज्ञात होता है कि ज्ञान का स्वभाव तो मात्र जानने का ही है,.. आहाहा! सब लाख बात आवे, करोड़ बात आवे। जड़ सब, चैतन्य सब, उनके गुण-पर्यायें सब.. वास्तव में तो जानने का स्वभाव है। कोई मेरा है - ऐसा मानने का उनका स्वभाव नहीं है। जानना, समय-समय की अवस्था हो, वह अवस्था जीवद्रव्य की है। ऐसे उस अवस्थ का लक्ष्य छोड़कर द्रव्य पर दृष्टि करे और तीव्र पुरुषार्थ से यह अभ्यास करे तो उसे भेदज्ञान होता है।

मुमुक्षु : अन्तरंग में क्या लेना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तरंग में राग और आत्मा, दो (लेना)। यह तो बात हुई न! यह (आत्मा) चैतन्यस्वरूप है और यह राग, इन दो का भेद। अन्तर में दो (का) भेदकर, बाहर में नहीं, ऐसा कहते हैं। बाहर नहीं, अन्दर में राग और आत्मा दोनों भिन्न करे। आहाहा! अन्तरंग में अर्थात् अन्दर में। बाहर से कुछ (भेद) पाड़ना है? अन्दर में राग-दया, दान का विकल्प आवे, उससे चैतन्यस्वरूप का भेद-भिन्न पाड़ने का अभ्यास करे। आहाहा! भले (ही) रागादि टले नहीं, चारित्र बिना (टले नहीं), परन्तु पहले अभ्यास करके मैं राग नहीं, मैं चैतन्य हूँ—ऐसे राग से भिन्न करके भेदज्ञान करे। आहाहा!

अन्तरंग में ज्ञान और राग-द्वेषादि का भेद करने का। अन्तर में भेद करने का। शास्त्र पढ़कर या ऐसा करके धारे, वह नहीं। सुनकर धार रखे (कि) राग भिन्न है और आत्मा भिन्न है - यह नहीं, ऐसा कहते हैं। अन्तर में चैतन्यस्वरूप, राग से पूर्ण भिन्न है, ऐसे अन्तर का अभ्यास करे। आहाहा! क्यों?—कि ज्ञान का स्वभाव तो मात्र जानने का ही है,.. मात्र जानने का ही है, ऐसा। रागादि करना, यह भी उसका स्वभाव नहीं, तो पर का करना तो बन नहीं सकता। राग से लेकर सब परचीज़, पूरा लोकालोक ज्ञाता का ज्ञेय है। (आत्मा) जाननेवाला है (और) वह जानने में ज्ञात हो - (ऐसा) ज्ञेय है।

समय-समय की अवस्था समय-समय में होती है। द्रव्य स्वयं पर्याय को प्राप्त करता है, पहुँचता है। द्रव्य और गुण से पर्याय होती है, परन्तु इसका तात्पर्य क्या? ऐसा जानकर अन्तर में पृथक् करना, आहाहा! राग और ज्ञानस्वरूप भगवान दोनों पृथक् हैं।

ज्ञान में जो रागादि की कलुषता.. आत्मा में जो राग-द्वेष, दया, दान, काम, क्रोध भाव (होते हैं, वे) कलुषित हैं। चाहे तो दया का, दान का, व्रत का भाव होवे (परन्तु) है वह कलुषित। विकल्प है, राग है, कलुषित है। वह कलुषता आकुलतारूप सकल्पविकल्प भासित होते हैं.. वह आकुलतारूप है। आहाहा! भगवान तो अतीन्द्रिय अनादि-अनन्त आनन्द और शान्तस्वरूप है। रागादि, आकुलता और दुःखरूप है। ऐसे दोनों को भिन्न (करे)।

वे सब पुद्गलविकार हैं; जड़ हैं। वे सर्व। वे नहीं जानते अपने को। राग-द्वेष, दया, दान, वे नहीं जानते अपने को, नहीं जानते आत्मा को। पर द्वारा जानने में आते हैं। यह आ गया है। पर द्वारा जानने में आते हैं; इसलिए वे जड़ हैं। जाननेवाले द्वारा जानने में आते हैं। राग, जाननेवाले द्वारा जानने में आता है। आहाहा! राग, राग द्वारा जानने में नहीं आता है।

इस प्रकार ज्ञान और रागादि के भेद का स्वाद आता है.. आहाहा! ऐसे जब राग के विकल्प से चैतन्यस्वरूप जानक भिन्न है - ऐसा भेदज्ञान होता है, तब उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! अनादि का जो राग का स्वाद आकुलता था, (वह) दुःख का स्वाद था। उससे भिन्न पड़कर, चैतन्यस्वरूप में राग नहीं, राग में

(चैतन्य) स्वरूप नहीं। ऐसे सर्वत्र अभ्यास करने से, भिन्न करने से उसे आनन्द का स्वाद आता है। यह लक्षण बताया।

ऐसा तो बहुत से कहते हैं कि भेद पड़ा है, भेदज्ञान हुआ है। परन्तु भेदज्ञान होता है, उसे अतीन्द्रिय आत्मा के आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! समझ में आया? जिसे, चैतन्यस्वरूप त्रिकाली है और राग विकृत आकुलता और दुःखरूप है—ऐसे दो के बीच का भेद जानकर आत्मा की ओर झुकता है, झुकने पर राग से भिन्न पड़ता है; इसलिए उसे राग का स्वाद था, वह छूट जाता है। आहाहा! अर्थात् आंशिक (छूट जाता है) और आत्मा के आनन्द का स्वाद आता है, तब उसे भेदज्ञान हुआ कहा जाता है। आहाहा! तब उसे सम्यग्दर्शन होता है।

आहाहा! यह तो पहली शुरुआत की बात है। पहली भूमिका सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं होता। क्या कहलाता है, कैसे होता है – इसकी खबर नहीं होती और व्रत, तप, अपवास करके... आहाहा! जिन्दगी मिथ्यात्व में व्यतीत करता है।

अर्थात् अनुभव होता है। भेदज्ञान होता है अर्थात् राग और द्वेष के विकल्प... आहाहा! वह आकुलता है और भगवान अन्दर निराकुल आनन्दस्वरूप है। ऐसा भेदज्ञान होने पर वह आत्मा का जो स्वभाव है, उसका आंशिक आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! समझ में आया? तब उसे भेदज्ञान कहा जाता है। आहाहा! अनुभव होता है।

जब ऐसा भेदज्ञान होता है, तब आत्मा आनन्दित होता है.. आहा! आया था न? आनन्द आता है। राग के विकल्प की आकुलता और भगवान स्वभाव की अनाकुल दशा, दोनों का अन्तर करने पर उसे अतीन्द्रिय आनन्द आता है, अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का-आत्मा का अनुभव होता है। तब उसे ज्ञान में ज्ञात होता है कि यह आत्मा ऐसा है। यह ज्ञान में ज्ञात हुए बिना, आत्मा ऐसा है – ऐसा निर्णय अज्ञानी को नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग। यह तो धर्म की पहली सीढ़ी की बात है।

क्योंकि उसे ज्ञात है कि 'स्वयं सदा ज्ञानस्वरूप ही रहा है,..' यह क्या कहा? – कि राग-द्वेष के परिणाम जो पुण्य-पाप के विकल्प थे, वह आकुलता थी। उनसे, आत्मा के चैतन्यस्वरूप की ओर झुकने पर उनसे –विकल्प से भेद पड़ गया। भेद पड़ने

पर आनन्द का स्वाद आया। स्वाद आने पर ज्ञात हुआ कि आत्मा तो सदा ऐसा ही रहा है; कभी रागरूप हुआ नहीं। आहाहा! जहाँ दृष्टि पड़कर आत्मा का अनुभव हुआ, इसलिए (ऐसा हुआ कि) यदि यह आत्मा ऐसा का ऐसा न रहता हो तो अनुभव हुआ उस समय यह कहाँ से आया? यह अनुभव होने पर आत्मा अनादि (से) ऐसा ही है। उसमें नहीं राग, नहीं द्वेष, नहीं विकल्प, दया-दान का विकल्प उसमें नहीं है। आहाहा!

आनन्दित होता है क्योंकि उसे ज्ञात है कि “स्वयं सदा ज्ञानस्वरूप ही रहा है,.. अर्थात् ज्ञान की पर्याय राग से भिन्न पड़ने पर, ज्ञान का भाव-स्वाद आया, इसलिए उसमें ज्ञात हुआ कि यह आत्मा तो यह ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप ही सदा है। कभी रागरूप आत्मा हुआ नहीं। कठिन बात है, भाई! मूल बात (छोड़कर) यह सब ऊपर-ऊपर से करते हैं, लोगों को अभ्यास नहीं। व्रत, तप में जोड़ देते हैं। धामधूम! बड़ी मूर्तियाँ स्थापित करे और जुलूस (निकाले)।

जब तक राग के विकल्प से चैतन्यस्वभावी प्रभु भिन्न है, ऐसा भान हुए बिना उस चैतन्य की जाति का नमूना, स्वाद का अर्थ कि सम्यग्ज्ञान का (स्वाद) नहीं आता। नमूना आया, उसके द्वारा ज्ञात हुआ कि यह तो पूरा आत्मा इस स्वरूप ही है - ज्ञानस्वरूप ही है और आनन्दस्वरूप ही है। आहाहा!

‘स्वयं सदा ज्ञानस्वरूप ही रहा है,.. देखा? स्वरूप ही रहा है,.. (ऐसा कहा)। वस्तु जो है, वह दया, दान के रागरूप कभी हुई ही नहीं। आहाहा! हुई होवे तो भिन्न जानने में कैसे आवे? ऐसा। आहाहा! राग के विकल्प दया, दान से भिन्न करके ज्ञात हुआ, तब जानने में आया कि यह कभी रागरूप हुआ नहीं। होवे तो यह अनुभव में कैसे आवे? समझ में आया? आहाहा! मूल सम्यग्दर्शन की बात छोड़कर सब बातें (लोग करते हैं)। व्रत पालना और अपवास करना, यह करना और वह करना। लोगों में (धर्मिष्ठ) माने, लोग माने, कर सके नहीं और (कहे), बेचारा कष्ट करता है, परन्तु उसका फल तो चार गति में भटकना है। आहाहा! यह वस्तु भव के अभाव की है।

चैतन्यस्वरूप जाननस्वभाव और राग आकुलता और यह (स्वरूप) अनाकुल। दोनों की भिन्नता जाननी, तो आत्मा को जाना। आत्मा को जाना अर्थात् आत्मा ऐसा ही सदा

रहा है, ऐसा जाना। आहाहा! 'रागादिरूप कभी नहीं हुआ' इसलिए आचार्यदेव ने कहा है कि 'हे सत्पुरुषो!..' आहाहा! देखो न करुणा! है न कलश में? हे सत्पुरुषों! आहाहा! भेदज्ञान-मुदेति निर्मल-मिदं मोदध्व-मध्यासिता: ऐसा करो, प्रभु! ऐसा कहते हैं। आहाहा! हे सत्पुरुषों! लिंगपाहुड़ में बहुत आता है, लिंगपाहुड़ है न? उसमें हे महाजस! ऐसे शब्द बहुत आते हैं। वह चाहे जैसा हो, परन्तु उसे हे महाजस! महासन्त! हे मेरे मित्र! मित्र! ऐसी भाषा बहुत आती है, हों! हे महाभाग्य! ऐसा कहकर बुलाते हैं। आहाहा! अष्टपाहुड़! आहाहा!

यहाँ तो उसे भिन्न करके अनुभव कराना है न! राग के कण से भी भिन्न। अब फिर बाहर के (पदार्थों का) क्या? लोहे का (व्यापार करे)। आहाहा! बहुत कठिन काम। धन्धा कर सके नहीं। कर सकता है, ऐसा मानता है। धन्धा कर सकता नहीं। आहाहा! क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप है। जो ज्ञान है, वह किसी एक चीज़ को मेरी माने, वह तो ज्ञान का स्वरूप ही नहीं है। ज्ञान सर्व को जाने, यह उसका स्वरूप है। आत्मा के अतिरिक्त सर्व वस्तुओं में से कोई एक-दो चीज़ भी मेरी है, ऐसा मानना, वह वस्तु नहीं है। परन्तु आत्मा के अतिरिक्त अनन्त चीज़ें हैं, उन सबको जाने, ऐसा इसका स्वभाव है। आहाहा! इसलिए स्वयं ज्ञातादृष्टा है। यह सब कहकर भी ज्ञातादृष्टा कराना है। आहाहा!

'हे सत्पुरुषो! अब मुदित होओ'। आहाहा! हे धर्मात्मा! आहाहा! अब धर्म में आनन्द करो। धर्म का आनन्द लो। राग का आनन्द तो अनन्त काल से लिया। दुःख का (स्वाद था)। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों या चाहे तो हिंसा, झूठ, चोरी (के परिणाम हों), वे सब परिणाम दुःखरूप हैं, आकुलता है। भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। कैसे जँचे? अतीन्द्रिय वीतरागस्वभाव से भरपूर है। आहाहा! अतीन्द्रिय शान्ति, वह चारित्र है। वीतरागस्वरूप से-चारित्र से भरपूर भगवान है। आहाहा! उसमें विकार तो नहीं, परन्तु अपूर्णता नहीं, ऐसी परमात्मवस्तु स्वयं है। आहाहा! उसे राग से भिन्न करके उसे देख।

'हे सत्पुरुषो! अब मुदित होओ'। अब गया काल, गया काल भले गया, परन्तु अब अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में आओ। आहाहा! लो, ऐसा है, चिमनभाई! अमुक

करो, ऐसा नहीं कहा। हे सत्पुरुषो! मन्दिर बनाओ, शास्त्र बनाओ, दान करो, (ऐसा नहीं कहा)। आहाहा! भगवान की भक्ति करो, वह तो सब राग है। आहाहा! वीतरागस्वरूप ही प्रभु है। चारित्रस्वरूप कहो, या रागरहित वीतरागस्वरूप कहो। उसका स्वरूप ही वीतराग है, उसका स्वरूप ही ज्ञान है, उसका स्वरूप ही श्रद्धा है, उसका स्वरूप ही शान्ति है, उसका स्वरूप स्वच्छता है, उसका स्वरूप प्रभुता है। ऐसे अनन्त गुण से पवित्रता से भरपूर भगवान को इस कृत्रिम क्षणिक विकार के दुःख में से भिन्न करके प्रभु को देख। आहाहा! और देखकर आनन्द करो, उसमें आनन्द होगा। आहाहा! 'मुदित होओ' उसमें तुम्हें आनन्द आयेगा। कितने ही ऐसा कहते हैं कि ऐसी दशा सातवें गुणस्थान में होती है। ऐसा सब पाले, व्रत सब (पाले), फिर सातवें गुणस्थान में (ऐसी दशा) होती है। अरे रे! बहुत विपरीत।

टीका : इस प्रकार जब यह भेदविज्ञान ज्ञान को अणुमात्र भी (रागादि-विकाररूप) विपरीतता को न प्राप्त कराता.. भेदविज्ञान—राग से पृथक्ता का ज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान। आत्मज्ञान हुआ, इसलिए राग से भिन्न पड़ा। जब यह भेदविज्ञान ज्ञान को अणुमात्र भी.. आत्मा को जरा। अणुमात्र राग का अंश, गुण-गुणी के भेद का अंश एक राग, ऐसे अणुमात्र राग को भी। आहाहा! (रागादि-विकाररूप) विपरीतता को न प्राप्त कराता.. ज्ञानस्वभाव में राग मेरा है, ऐसी विपरीतता नहीं प्राप्त कराता। आहाहा! चौथे गुणस्थान में ऐसा होता है। राग आता है, तथापि अपनेरूप नहीं मानता। ज्ञानस्वरूपी भगवान में ज्ञातादृष्टा हूँ। आहाहा! यह ज्ञातादृष्टा अनादि का स्वभाव है। यह रागादि कृत्रिम थे, क्षणिक और कृत्रिम थे। वह (स्वभाव) सदा अकृत्रिम रहता है। राग से भिन्न पड़कर... आहाहा! विपरीतता को न प्राप्त कराता.. ज्ञान अणुमात्र राग को अपना नहीं मानता। आहाहा!

भगवान को सुनने का भाव, वह राग है। आहाहा! ऐसी बातें। स्वद्रव्य के आश्रय के अतिरिक्त किसी भी परद्रव्य पर लक्ष्य गया तो राग हुए बिना रहेगा ही नहीं। इसका अर्थ कहते हैं। राग से पृथक् कर अर्थात् तेरा आश्रय ले। भगवान चैतन्यज्योति सच्चिदानन्द प्रभु का आश्रय ले। आहाहा! आत्मा क्या है? (वह) ज्ञात हुए बिना आश्रय किस प्रकार लेना? पहले अनुमान से जाने, विकल्प से जाने। पहले आवे, तो भी उसे छोड़कर फिर अनुभव कर। आहाहा!

जब यह भेदविज्ञान ज्ञान को.. ज्ञान को अर्थात् आत्मा को अणुमात्र भी (रागादि-विकाररूप) विपरीतता को न प्राप्त कराता हुआ.. अणुमात्र भी रागादिरूप से प्राप्त नहीं कराता। समकित्ती को भले दूसरे राग आवें, परन्तु उससे भिन्न वह ज्ञान को रागरूप नहीं परिणमाता। आहाहा! ज्ञान को रागरूप नहीं कराता। आहाहा! अविचलरूप से रहता है,.. ज्ञान में ज्ञान चलित न हो वैसे रहता है। चैतन्य ज्योति जलहल ज्योति प्रभु! शान्त.. शान्त.. स्वभाव का पर्वत! आनन्द का पर्वत! प्रभु! आहाहा! उसे जहाँ दृष्टि में आया (तो) अब वहाँ अविचलरूप से रहता है। स्वभाव में अविचलरूप से-चले नहीं वैसे रहता है। राग में तो फेरफार-फेरफार हुआ ही करता था और दोनों (भाव में) दुःख था। शुभराग, वह दुःख और अशुभराग, वह दुःख। आहाहा!

तब शुद्ध-उपयोगमयात्मकता के द्वारा.. शुद्ध-उपयोगमयात्मकता के द्वारा देखा? यहाँ शुद्ध उपयोग डाला है। यह आत्मा का भेद करके उपयोग हो, वह शुद्ध उपयोग से होता है; शुभोपयोग से नहीं। आहाहा! कितने ही ऐसा कहते हैं कि शुद्धोपयोग सातवें (गुणस्थान में) होता है। अभी यहाँ तो (उसके) पहले की बात है। आहाहा! शुभराग में वह नहीं होता। शुभराग में शुभोपयोग में वह ज्ञात नहीं होता। राग से रहित शुद्धोपयोग में वह आत्मा ज्ञात होता है। आहाहा! है?

शुद्ध-उपयोग.. उपयोगात्मक अर्थात् उपयोगस्वरूप शुद्ध उपयोगस्वरूपपने द्वारा ज्ञान केवल ज्ञानरूप ही रहता हुआ.. ज्ञान अर्थात् आत्मा। शुद्ध-उपयोग परिणमन में आकर स्वरूप में दृष्टि की, वहाँ ही अब स्थिर होता है। जहाँ से आनन्द आया, वहाँ स्थिर होता है। जिसमें से अतीन्द्रिय आनन्द देखा, उसमें अब स्थिर होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शुद्ध उपयोगात्मक ज्ञान केवल ज्ञानरूप ही रहता हुआ.. आहाहा! शुभ और अशुभ उपयोग छूटकर स्व-सन्मुख का शुद्ध उपयोग हुआ, तब सब पृथक् पड़ जाता है। ज्ञान केवल ज्ञानरूप ही रहता हुआ.. ज्ञान केवल ज्ञानरूप ही रहता हुआ, लो! आत्मा, वह केवल आत्मारूप ही रहता हुआ। आहाहा!

किञ्चित्मात्र भी रागद्वेषमोहरूप भाव को नहीं करता;.. ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा का स्वभाव ज्ञान और आनन्द से पूर्ण भरपूर, उसका राग से भिन्न पड़ने पर वह आत्मा को रागरूप नहीं करता। आहाहा! ज्ञान किञ्चित्मात्र भी रागद्वेषमोहरूप

भाव को नहीं करता; इसलिए (यह सिद्ध हुआ कि) भेदविज्ञान से शुद्ध आत्मा की उपलब्धि.. (होती है)। आहाहा! भेदविज्ञान से आत्मा का अनुभव (होता है)। आहाहा! दूसरा कोई साधन नहीं है। व्यवहार साधन और निश्चय साध्य, (ऐसे) कथन बहुत आते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : भेदविज्ञान और आत्मानुभव दोनों साथ होते हैं या पहले भेदविज्ञान होता है और फिर आत्मानुभव होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों एक का एक ही है। यहाँ भेदविज्ञान हुआ, वही (आत्मानुभव का) स्वरूप है, शब्दफेर है। राग से भिन्न पड़कर अनुभव हुआ, वही भेदज्ञान। शुद्ध उपयोग हुआ। शुद्ध उपयोग में ही सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : भेदविज्ञान को विकल्परूपी कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ नहीं। वह तो (समयसार नाटक में है)। जयसेनाचार्यदेव की टीका में कहा है कि भेदज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान है। वह (नाटक समयसार में) विकल्प से बतलाया है। यह मैं नहीं, यह मैं नहीं, यह मैं नहीं, वहाँ तक विकल्प है, ऐसा। परन्तु (अन्दर) स्थिर होता है, तब विकल्प नहीं है। आहाहा! ऐसा धर्म।

मुमुक्षु : ऐसा धर्म सुने थोड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! शुद्धोपयोगात्मक होता हुआ, आहाहा! ज्ञान केवल ज्ञानरूप ही रहता हुआ किञ्चित्मात्र भी रागद्वेषमोहरूप भाव को नहीं करता; इसलिए (यह सिद्ध हुआ कि) भेदविज्ञान से शुद्ध आत्मा की उपलब्धि (अनुभव).. उससे उपलब्धि (होती है)। भेदज्ञान से राग-द्वेष-मोह से भिन्नता का उपलब्धि (होती है)। आहाहा! राग करने से होगी, व्यवहार साधन है, (उससे) होगी, (इसका) यहाँ निषेध करते हैं। व्यवहार साधन है, आया था। कल आया था। प्रवचनसार में अन्तरंग-बहिरंग साधन (आया था)। वह साधन, निमित्त है, उसका ज्ञान कराया है। आहाहा! होता है, निमित्त किस समय में? किस कार्य-काल में निमित्त नहीं है? निमित्त होता ही है, जानता है। उससे कुछ होता नहीं। आहाहा!

आत्मा का अनुभव भेदविज्ञान से होता है। यह सिद्धान्त कहा। राग से भेद करना,

ऐसा भेदज्ञान, (उससे) आत्मा की प्राप्ति होती है। राग को शामिल रखकर उससे लाभ होगा, ऐसा रखकर आत्मा का लाभ नहीं होगा। आहाहा! भेदविज्ञान से शुद्ध आत्मा की उपलब्धि.. अर्थात् प्राप्ति। और शुद्ध आत्मा की उपलब्धि से.. शुद्ध आत्मा के अनुभव से रागद्वेषमोह का (आस्रवभाव का) अभाव.. आहाहा! जितने अंश अन्दर में एकाग्र हो, उतने अंश में राग-द्वेष का अभाव (होता है); मोह का अभाव तो हो गया है, परन्तु अस्थिरता रही है, उसका (अभाव करता है)। और शुद्ध आत्मा के अनुभव से रागद्वेषमोह का (आस्रवभाव का) अभाव जिसका लक्षण है.. ऐसा जिसका लक्षण है। ऐसा संवर होता है। लो, यह संवर। आहाहा! यहाँ तो अभी (लोग मानते हैं कि) लड़के-लड़कियाँ बैठे और संवर हो जाये और फिर लड़ू और पताशा, ऐसा कुछ मिले। आहाहा!

मुमुक्षु : छह काय की रक्षा तो हुई न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छह काय की रक्षा में स्वयं आत्मा छह काय (में) नहीं? अनन्त-अनन्त आनन्द का समुद्र है, पवित्र गुण से भरपूर है। आहाहा! उसकी सत्ता का तो स्वीकार अभी करता नहीं, उसकी अस्ति का स्वीकार करता नहीं और बाह्य चीज का स्वीकार (करता है, वह) अज्ञान है। आहाहा! यह संवर हुआ, संवर। वह राग है, वह आस्रव है। उससे भिन्न पड़कर स्वरूप का अनुभव करना, वह अनास्रव और संवर है। उससे अब कर्म नहीं आते। आहाहा! यह संवर। यहाँ तो (लोगों ने) संवर को सरल कर डाला। सामायिक करके जरा बैठे, (इसलिए) हो गया संवर, प्रौषध किया तो हो गया संवर। ऐसा नहीं है—यह कहते हैं। आहाहा!

ऐसा संवर होता है। कैसा? आत्मा का अनुभव और राग-द्वेष-मोह का अभाव जिसका लक्षण है, ऐसा संवर होता है। आहाहा! उसे संवर कहते हैं, फिर निर्जरा होती है। राग-द्वेष से भिन्न पड़ा, प्रभु! उसका अनुभव हो, तब इसे संवर होता है। आहाहा! यह पूरा हुआ।

गाथा-१८४-१८५

कथं भेदविज्ञानादेव शुद्धात्मोपलम्भ इति चेत् -

जह कणयमगितवियं पि कणयभावं ण तं परिच्चयदि ।
तह कम्मोदय-तविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥१८४॥
एवं जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि राग-मेवादं ।
अण्णाण-तमोच्छण्णो आद-सहावं अयाणंतो ॥१८५॥

यथा कनकमग्नितप्तमपि कनकभावं न तं परित्यजति ।
तथा कर्मोदयतप्तो न जहाति ज्ञानी तु ज्ञानित्वम् ॥१८४॥
एवं जानाति ज्ञानी अज्ञानी मनुते रागमेवात्मानम् ।
अज्ञान-तमोऽवच्छन्नः आत्म-स्वभाव-मजानन् ॥१८५॥

यतो यस्यैव यथोदितं भेदविज्ञानमस्ति स एव तत्सद्भावात् ज्ञानी सन्नेवं जानाति । यथा प्रचण्डपावकप्रतप्तमपि सुवर्णं न सुवर्णत्वमपोहति तथा प्रचण्डकर्मविपाकोपष्टब्धमपि ज्ञानं न ज्ञानत्वमपोहति, कारणसहस्रेणापि स्वभावस्यापोढुमशक्यत्वात्; तदपोहे तन्मात्रस्य वस्तुन एवोच्छेदात् ।

न चास्ति वस्तूच्छेदः, सतो नाशासम्भवात् । एवं जानन्श्च कर्माक्रान्तोऽपि न रज्यते न द्वेष्टि न मुह्यति, किन्तु शुद्धमात्मानमेवोपलभते ।

यस्य तु यथोदितं भेदविज्ञानं नास्ति स तदभावादज्ञानी सन्नज्ञानतमसच्छिन्नतया चैतन्यचमत्कार-मात्रमात्मस्वभावमजानन् रागमेवात्मानं मन्यमानो रज्यते द्वेष्टि मुह्यति च, न जातु शुद्धमात्मानमुप-लभते । ततो भेदविज्ञानादेव शुद्धात्मोपलम्भः ॥१८४-१८५॥

अब यह प्रश्न होता है कि भेदविज्ञान से ही शुद्ध आत्मा की उपलब्धि (अनुभव) कैसे होती है? उसके उत्तर में गाथा कहते हैं:-

ज्यों अग्नितप्त सुवर्ण भी, निज स्वर्णभाव नहीं तजे।
 त्यों कर्मउदय प्रतप्त भी, ज्ञानी न ज्ञानिपना तजे॥१८४॥
 जीव ज्ञानि जाने ये हि, अरु अज्ञानि राग ही जीव गिनें।
 आत्मस्वभाव अजान जो, अज्ञानतमआच्छादसे॥१८५॥

गाथार्थ : [यथा] जैसे [कनकम्] सुवर्ण [अग्नितप्तम् अपि] अग्नि से तप्त होता हुआ भी [तं] अपने [कनकभावं] सुवर्णत्व को [न परित्यजति] नहीं छोड़ता [तथा] इसी प्रकार [ज्ञानी] ज्ञानी [कर्मोदयतप्तः तु] कर्मों के उदय से तप्त होता हुआ भी [ज्ञानित्वम्] ज्ञानित्व को [न जहाति] नहीं छोड़ता;— [एवं] ऐसा [ज्ञानी] ज्ञानी [जानाति] जानता है, [अज्ञानी] और अज्ञानी [अज्ञानतमोऽवच्छन्नः] अज्ञानांधकार से आच्छादित होने से [आत्मस्वभावम्] आत्मा के स्वभाव को [अजानन्] न जानता हुआ [रागम् एव] राग को ही [आत्मानम्] आत्मा [मनुते] मानता है।

टीका : जिसे ऊपर कहा गया ऐसा भेदविज्ञान है, वही उसके (भेदविज्ञान के) सद्भाव से ज्ञानी होता हुआ इस प्रकार जानता है—जैसे प्रचण्ड अग्नि के द्वारा तप्त होता हुआ भी सुवर्ण, सुवर्णत्व को नहीं छोड़ता; उसी प्रकार प्रचण्ड कर्मोदय के द्वारा घिरा हुआ होने पर भी (विघ्न किया जाये तो भी) ज्ञान, ज्ञानत्व को नहीं छोड़ता, क्योंकि हजारों कारणों के एकत्रित होने पर भी स्वभाव को छोड़ना अशक्य है; उसे छोड़ देने पर स्वभावमात्र वस्तु का ही उच्छेद हो जायेगा, और वस्तु का उच्छेद तो होता नहीं है क्योंकि सत् का नाश होना असम्भव है। ऐसा जानता हुआ ज्ञानी कर्मों से आक्रान्त (—घिरा हुआ) होता हुआ भी रागी नहीं होता, द्वेषी नहीं होता, मोही नहीं होता, किन्तु वह शुद्ध आत्मा का ही अनुभव करता है। और जिसे उपरोक्त भेदविज्ञान नहीं है, वह उसके अभाव से अज्ञानी होता हुआ, अज्ञानांधकार द्वारा आच्छादित होने से चैतन्य—चमत्कारमात्र आत्मस्वभाव को न जानता हुआ, राग को ही आत्मा मानता हुआ, रागी होता है, द्वेषी होता है, मोही होता है, किन्तु शुद्ध आत्मा का किंचित्मात्र भी अनुभव नहीं करता। इससे सिद्ध हुआ कि भेदविज्ञान से ही शुद्ध आत्मा की उपलब्धि (—अनुभव) होती है।

भावार्थ : जिसे भेदविज्ञान हुआ है, वह आत्मा जानता है कि 'आत्मा कभी ज्ञान स्वभाव से छूटता नहीं है।' ऐसा जानता हुआ वह, कर्मोदय के द्वारा तप्त होता हुआ भी, रागी द्वेषी मोही नहीं होता, परन्तु निरन्तर शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है। जिसे

भेदविज्ञान नहीं है, वह आत्मा, आत्मा के ज्ञानस्वभाव को न जानता हुआ राग को ही आत्मा मानता है, इसलिए वह रागी, द्वेषी, मोही होता है, किन्तु कभी भी शुद्ध आत्मा का अनुभव नहीं करता। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि भेदविज्ञान से ही शुद्ध आत्मा की उपलब्धि होती है।

गाथा - १८४-१८५ पर प्रवचन

(अब) दो गाथायें आयीं। अब यह प्रश्न होता है कि भेदविज्ञान से ही शुद्ध आत्मा की उपलब्धि (अनुभव).. तुम एक ही बात करते हो, एक ही (कहो तो) एकान्त (हो जाता है)। कुछ दूसरा तो कहो, कुछ साधन से होता है, इससे होता है, इससे होता है। भगवान का स्मरण करे, भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... वह राग है। आहाहा! भेदविज्ञान से ही शुद्ध आत्मा की उपलब्धि (अनुभव) कैसे होती है? किस प्रकार होता है? ऐसा पूछता है। शिष्य का प्रश्न है। जिसे अन्दर ऐसा उगा (प्रश्न उठा), उसे उत्तर दिया जाता है। पूछता है, भेदविज्ञान से ही.. राग से भिन्न करके स्वरूप आत्मा का ज्ञान हुआ, यह बात कुछ कम नहीं, बापू! ओहोहो! जिसे आत्मा नजर में पड़ा, उसको ज्ञेय बनाया और उसका ज्ञान हुआ, वह अलौकिक बात है। आहाहा! उसके समक्ष ये सब व्रत, नियम और तपस्या उसके समक्ष पानी भरते हैं। बन्ध के कारण हैं। आहाहा!

अब यह प्रश्न होता है कि भेदविज्ञान से ही शुद्ध आत्मा की उपलब्धि (अनुभव).. उपलब्धि का अर्थ (अनुभव किया है)। कैसे होती है? उसका उत्तर कहते हैं।

जह कणयमगितवियं पि कणयभावं ण तं परिच्चयदि ।
तह कम्मोदय-तविदो ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥१८४॥
एवं जाणदि णाणी अण्णाणी मुणदि राग-मेवादं ।
अण्णाण-तमोच्छण्णो आद-सहावं अयाणंतो ॥१८५॥

ज्यों अग्नितप्त सुवर्ण भी, निज स्वर्णभाव नहीं तजे।
त्यों कर्मउदय प्रतप्त भी, ज्ञानी न ज्ञानिपना तजे ॥१८४॥

जीव ज्ञानि जाने ये हि, अरु अज्ञानि राग ही जीव गिनें।

आत्मस्वभाव अजान जो, अज्ञानतमआच्छादसे॥१८५॥

टीका : जिसे ऊपर कहा गया ऐसा भेदविज्ञान है.. राग के विकल्प से अत्यन्त निर्विकल्प प्रभु आत्मदल अन्दर आनन्द दल है, सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! उसके ज्ञान का पार नहीं होता। वकालात और डॉक्टर का सब ज्ञान करते हैं न, वह सब अज्ञान है। यह तो ज्ञान का (अभ्यास है)। आहाहा! ज्ञानस्वभाव का क्या पार! ऐसे ज्ञानस्वभाव से भेदविज्ञान है, वही उसके (भेदविज्ञान के) सद्भाव से ज्ञानी होता हुआ.. भेदज्ञान से वही उसके (भेदविज्ञान के) सद्भाव से ज्ञानी होता हुआ.. आहाहा! कोई शास्त्र पढ़कर ज्ञानी होता हुआ, ऐसा नहीं कहा। ग्यारह अंग अनन्त बार पढ़ गया। आहाहा! जिसे ऊपर कहा गया ऐसा भेदविज्ञान है, वही उसके (भेदविज्ञान के) सद्भाव से ज्ञानी होता हुआ इस प्रकार जानता है.. ज्ञानी होता हुआ इस प्रकार जानता है। जैसे प्रचण्ड अग्नि के द्वारा तप्त होता हुआ.. सुवर्ण। प्रचण्ड कठोर अग्नि द्वारा तप्त होता हुआ ऐसा सुवर्ण। सुवर्ण सुवर्णत्व को नहीं छोड़ता.. सुवर्णत्व को सुवर्ण छोड़ता नहीं। उसे चाहे जैसी अग्नि लगी हो... आहाहा! उसे अग्नि की आँच लगती नहीं। सुवर्णत्व नहीं छोड़ता। आहाहा! यह दृष्टान्त हो गया।

उसी प्रकार प्रचण्ड कर्मोदय के द्वारा घिरा हुआ.. आहाहा! कठोर कर्म के उदय से घिरा हुआ। कुटुम्ब और कबीला, स्त्री और पुत्र, धन्धा और व्यापार, दुकान (इनसे) घिरा हुआ। प्रभु आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञानस्वरूप है, वह बाहर के कर्मोदय से घिरा हुआ। आहाहा! घिरा हुआ होने पर भी (विघ्न किया जाय तो भी) ज्ञान ज्ञानत्व को नहीं छोड़ता,.. अर्थात् आत्मा, वह आत्मत्व नहीं छोड़ता। आहाहा! अग्नि के कारण जैसे सुवर्ण सुवर्णत्व नहीं छोड़ता; वैसे ही धर्मी जीव को प्रतिकूलता के ढेर आवें तो भी वह अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता। आहाहा!

ज्ञान ज्ञानत्व.. (अर्थात्) आत्मा आत्मत्व नहीं छोड़ता। क्योंकि हजारों कारणों के एकत्रित होने पर भी स्वभाव को छोड़ना अशक्य है;.. आहाहा! स्वभाव है, वह किस प्रकार छूटे? हजारों कारण, लाख कारण नहीं हो। आहाहा! चैतन्यस्वभाव है, निर्लेप

है, निरालम्ब है। ऐसी चीज़ को कभी... आहाहा! छोड़ता नहीं और परवस्तु को अपनी मानता नहीं। हजारों कारणों के एकत्रित होने पर भी स्वभाव को छोड़ना अशक्य है;.. कहीं स्वभाव छूटता है? उसे छोड़ देने पर स्वभावमात्र वस्तु का ही उच्छेद हो जायेगा,.. आहाहा! सुवर्ण को अग्नि देने पर भी सुवर्ण, सुवर्णत्व नहीं छोड़ता, इसी प्रकार धर्मी ने आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप जाना है, इससे चाहे जैसी प्रतिकूलता आवे परन्तु वह अपने आनन्दस्वरूप को, अनुभव को नहीं छोड़ता। आहाहा!

वस्तु का ही उच्छेद हो जायेगा,.. उसे छोड़ देने पर स्वभावमात्र वस्तु का ही उच्छेद हो जायेगा,.. आहाहा! वस्तु, वस्तु तो ज्ञान शुद्ध चैतन्य पवित्र का पिण्ड प्रभु है। पर्याय में जो विकार दशा है, उससे भिन्न करके भेदज्ञान हुआ, पश्चात् अब रागरूप हो, ऐसा है नहीं। ऐसा होवे तो वस्तु का नाश हो जाए। वस्तु का अस्तित्व निर्मल है, पवित्र है, ऐसा भान हुआ है; इसलिए अपवित्रता के प्रसंग में भी आत्मा का पवित्रतपना छूटता नहीं है। आहाहा! चाहे जितने परीषह हजार (आवे), चाहे जितने परीषह आवे, उपसर्ग आवे। आहाहा! अपने स्वरूप को छोड़ता नहीं। छोड़े तो वस्तु का नाश हो जायेगा। आहाहा!

क्योंकि सत् का नाश होना असम्भव है। सत् है। है, उसका अभाव किस प्रकार होगा? ऐसे भगवान आत्मा ज्ञानानन्द है, उसका भान—अनुभव हुआ, राग का (अनुभव) नहीं, ऐसा है—सत् है, उसका उच्छेद कैसे होगा? आहाहा! सत्स्वरूप भगवान आत्मा को जहाँ अनुभव में लिया, अब कहते हैं कि वह सत्स्वभाव जाये कहाँ? सत्स्वभाव स्वयं स्वभाव है, वह उच्छेद हो जाये? सत्स्वभाव असत् हो जाये? आहाहा! वह सत्स्वभाव कहीं रागरूप हो जाये? वह सत्स्वभाव दयारूप हो जाये? आहाहा! सत्स्वभाव तो सत्स्वभावरूप ही रहता है। है? क्योंकि सत् का नाश होना असम्भव है।

ऐसा जानता हुआ ज्ञानी कर्मों से आक्रान्त (-घिरा हुआ).. कर्म अर्थात् बाहर की प्रतिकूलता। ओहोहो! सातवें नरक की प्रतिकूलता, तथापि वहाँ सम्यग्दृष्टि जीव है। सम्यक् दृष्टि छोड़ता नहीं। आहाहा! अपना आनन्दस्वरूप जाना है, उसे लाख, करोड़, अनन्त प्रतिकूल संयोग आवे परन्तु अपने स्वरूप का विच्छेद नहीं होता। नहीं छोड़ता अर्थात् विच्छेद नहीं होता अर्थात् नाश नहीं होता। आहाहा!

ऐसा जानता हुआ.. धर्मी—ज्ञानी... आहाहा! रागी नहीं होता, द्वेषी नहीं होता,.. आहाहा! घिरा हुआ होने पर भी, ऐसा कहते हैं। प्रतिकूलता के घेरे में पड़ा हुआ हो। आहाहा! वह सातवें नरक की पीड़ा के घेरे में पड़ा है, वह दुःख सुना जाये नहीं। आहाहा! ऐसा अनन्त बार भोगा है। कहते हैं, वहाँ भी समकिति है, वह ऐसी प्रतिकूलता में भी अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता। आहाहा! जिसे अनाज का कण मिलता नहीं, पानी की बूँद (मिलती) नहीं। आहाहा! (यहाँ) तो जरा (गर्म) हवा लगे तो पंखा खाये और यह खाये और यह खाये। उसे बेचारे को अग्नि जैसी गर्म हवा प्रतिदिन (लगती है)। क्षुधा का पार नहीं। पूरे ढाई द्वीप का अनाज खिलाओ तो भी उसे दुःख मिटे नहीं, समुद्र का पानी पूरा पिलाओ तो तृषा मिटे नहीं, इतनी तृषा, इतनी क्षुधा, तथापि वहाँ मरता नहीं, देह छूटती नहीं, जब तक आयुष्य है। उसके शरीर के टुकड़े हों, टुकड़े हों। आहाहा!

(ऐसा होने पर भी) रागी नहीं होता, द्वेषी नहीं होता, मोही नहीं होता, किन्तु वह शुद्ध आत्मा का ही अनुभव करता है। लो! आहाहा! चाहे जैसे बाहर के प्रसंग में, अनुकूलता में प्रसन्न नहीं, प्रतिकूलता में द्वेष नहीं। आत्मा के अतिरिक्त जितनी चीज़ है, वह तो सब ज्ञेय है। ज्ञानी को तो ज्ञेय है। ज्ञेय के दो भाग करना कि यह प्रतिकूल है और यह अनुकूल है, वह अज्ञानी है। आहाहा! वह तो अज्ञान है। बीमार पड़े, स्त्री सम्हाले, वह कुछ कर दे, वस्त्र धो दे, ऐसा सब साधन करते हैं या नहीं? करे, उसमें आत्मा को क्या? वह तो बाहर की बात है। यह तो प्रतिकूल संयोग होवे तो भी वह आत्मा का अनुभव करता है।

और जिसे उपरोक्त भेदविज्ञान नहीं है, वह उसके अभाव से अज्ञानी होता हुआ, अज्ञानांधकार द्वारा आच्छादित होने से.. वह ज्ञानस्वरूपी ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, इस अज्ञान से ढँक गया है, भेदज्ञान नहीं है। राग से पृथक् (नहीं पड़ा है)। राग, वह मैं। यह दया, दान, व्रत, मैं हूँ। आहाहा! उनसे ढँका हुआ होने से चैतन्य-चमत्कारमात्र.. चैतन्य-चमत्कारमात्र आत्मस्वभाव को न जानता हुआ, राग को ही आत्मा मानता हुआ,.. लो। रागी होता है, द्वेषी होता है, मोही होता है, किन्तु शुद्ध आत्मा का किंचित्मात्र भी अनुभव नहीं करता। आहाहा! इससे सिद्ध हुआ कि भेदविज्ञान से ही शुद्ध आत्मा की उपलब्धि.. अर्थात् प्राप्ति। भेदविज्ञान से ही प्राप्ति होती है, दूसरे किसी कारण से नहीं होती। विशेष कहेंगे... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)